भारत में मुसलमानों का परिदृश्यः सच्चर समिति की रिपोर्ट और उसके नतीजे
Perspectives on Muslims in India: Sachar Committee Report and its Aftermath

राकेश बसंत
Rakesh Basant
March 14, 2011

मार्च, 2005 में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए)) सरकार के सत्ता में आने के छह महीने के अंदर ही भारत में मुसलमानों की दशा का विश्लेषण करने और उनकी सामाजिक-आर्थिक और शैक्षणिक स्थिति में सुधार लाने के लिए उपाय सुझाने के उद्देश्य से सच्चर समिति गठित कर दी गई थी. मंत्रिमंडल ने आनन-फानन में समिति की सिफ़ारिशों को अनुमोदित कर दिया और उन्हें कार्यान्वित करने के लिए अल्पसंख्यक मंत्रालय को नोडल मंत्रालय बना दिया, लेकिन यह रिपोर्ट राजनीतिज्ञों, शिक्षाशास्त्रियों और नागरिक समुदाय के बीच मुसलमानों की समस्याओं को लेकर कोई जोरदार बहस कराने में विफल रही.

यद्यपि संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) ने समिति के नतीजों और सिफ़ारिशों को पूरी तरह स्वीकार कर लिया था, फिर भी भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) ने इसे सत्ताधारी दल का देश को विभाजित करने का एक और हथकंडा करार दिया. रिपोर्ट के किसी नतीजे को भी बहुत अच्छी नज़र से नहीं देखा गया.संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) के सहयोगी दलों को भी, जो आज़ादी के समय से ही मुसलमानों के विकास के तथाकथित हिमायती रहे हैं, यह तथ्य निगलना पड़ा कि मुसलमानों की दशा इस देश में बहुत ही खराब है. दूसरी ओर भाजपा को भी इन तथ्यों से जूझना पड़ रहा था कि कांग्रेस पार्टी की ''तुष्टीकरण'' की नीति के बावजूद, जिसके खिलाफ़ वे मोर्चा खोले हुए हैं, भारत में मुसलमानों की दशा सचमुच बहुत खराब है.

केंद्र सरकार और कुछ राज्य सरकारें ''समिति की सिफ़ारिशों'' को थोड़ा-थोड़ा करके ही लागू करती रही हैं. वास्तव में मुसलमानों से सम्बद्ध नीति का हर मुद्दा सच्चर समिति से ही जोड़कर देखा जाने लगा था, भले ही इस रिपोर्ट में उसका ज़िक्र हो या नहीं. सामान्यतः इस समुदाय से जुड़ी सिफ़ारिशें रिपोर्ट के पूरे ढाँचे में बहुत कम हैं, लेकिन लोगों का ध्यान न केवल उन पर ही टिका रहता है, बल्कि उन्हें वे बढ़-चढ़ाकर भी पेश करते हैं. यही कारण है कि समुदायविशिष्ट न होने पर भी रिपोर्ट की मुख्य सिफ़ारिशों की अनदेखी हो जाती है और उन्हें मुस्लिम-विशिष्ट बनाकर ही पेश किया जाता है. उदाहरण के लिए,सच्चर समिति ने भेदभाव को रोकने के एक उपाय के रूप में यू.के. के जाति संबंध अधिनियम की तर्ज़ पर ''समान अवसर आयोग'' (ईओसी) गठित करने का प्रस्ताव किया था. यहाँ यह बात बिल्कुल साफ़ कर दी गई थी कि ''समान अवसर आयोग'' (ईओसी) दलितों, महिलाओं और अन्य पिछड़े वर्ग (ओबीसी) के सभी लोगों पर, जो भेदभाव के शिकार होते हैं, लागू होगा. हालाँकि मंत्रियों के समूह ने हाल ही में यह निर्णय किया है कि ''समान अवसर आयोग'' (ईओसी) केवल अल्पसंख्यकों पर ही लागू किया जाना चाहिए, जिनके लिए सच्चर समिति की सिफ़ारिशें लागू करने का प्रयास किया जा रहा है. यह बात दीगर है कि ''समान अवसर आयोग'' (ईओसी), जिसे मात्र ''सलाहकार'' निकाय के रूप में ही पेश किया जा रहा है, एक शक्ति रहित इकाई बनकर रह जाएगा.

इस प्रकार के निर्णयों के पीछे की राजनीति को समझना बहुत मुश्किल है. एक ओर तो यह कार्रवाई सरकार द्वारा अल्पसंख्यकों के तुष्टीकरण के संबंध में भाजपा के दावों की पुष्टि ही करेगी, वहीं दूसरी ओर सरकार इस प्रकार की परियोजना को सभी कमज़ोर वर्ग के लोगों पर लागू करने का अवसर भी खो देगी और साथ ही यह तर्क भी निरस्त हो जाएगा कि उदीयमान अर्थव्यवस्था में सभी वर्गों की भागीदारी बढ़ेगी और उन्हें इसके लिए अधिकाधिक अवसर भी मिलेंगे और विकास ही एक ऐसा महत्वपूर्ण मुद्दा है, जिससे राजनैतिक सक्रियता बढ़ने की भी संभावना भी है.

संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) ने सभी सिफ़ारिशों के बजाय कुछेक सिफ़ारिशों को ही लिया है, और एक समुदायविशिष्ट कार्यक्रम बनाकर उन्हें अपने चुनावी घोषणापत्र और अन्य दस्तावेज़ों में शामिल भी कर लिया है. ज़ाहिर है सरकार समग्र रूप में हस्तक्षेप की रणनीति लागू करने में अपनी कोई भूमिका नहीं मानती, जैसी कि सच्चर समिति की रिपोर्ट में परिकल्पना की गई थी. उदाहरण के लिए, उर्दू भाषा को बढ़ावा देना अच्छी बात है, लेकिन यह भी उतना ही ज़रूरी है कि स्कूलों और कॉलेजों में इसे पढ़ने वाले छात्रों को रोज़गार भी मिले. रोज़गार का मुद्दा मदरसे की नीतियों से कम ज़रूरी नहीं है,क्योंकि स्कूल जाने की उम्र वाले चार प्रतिशत से भी कम बच्चे स्कूली शिक्षा प्राप्त करते हैं. यह दुर्भाग्यपूर्ण होगा यदि मुसलमानों की शिक्षा का मुद्दा उर्दू और मदरसों तक ही सीमित रह जाता है.

ज़ाहिर है कि सच्चर समिति की मुख्य धारा से जुड़ी सिफ़ारिशों की राजनैतिक अहमियत उतनी नहीं है, जितनी कि समुदायविशिष्ट लाभों और कार्यक्रमों के आश्वासनों की है. यदि हम अतीत के अनुभवों से कुछ सीख ले सकें तो पाएँगे कि अधिकांश अल्पसंख्यकविशिष्ट कार्यक्रमों के लिए न तो कभी पर्याप्त निधि उपलब्ध हो सकी और न ही उनमें समन्वय स्थापित हो सका और न ही उनका अल्पसंख्यकों पर कोई प्रभाव ही पड़ा. इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात तो यह है कि मुख्य धारा के लिए अपेक्षित उपाय कहीं अधिक प्रगतिशील हैं और न केवल उनसे भेदभाव को बहुत हद दूर किया जा सकता था,बल्कि अल्पसंख्यकों की बदहाली को भी कम किया जा सकता था. इसके अलावा अल्पसंख्यकों के साथ वोट बैंक राजनीति का जो नकारात्मक धब्बा जुड़ा हुआ है, उसे भी इन नीतियों से बल मिल रहा है. यदि अल्संख्यक मुख्यधारा के कार्यक्रमों में प्रभावी रूप में भाग ले पाते हैं तो न केवल इन कार्यक्रमों की व्यापक पहुँच के कारण, बल्कि संसाधनों की भरमार के कारण भी वे अधिक लाभान्वित हो सकते हैं.

यह मानना भी ज़रूरी है कि मुख्यधारा के उपायों के लिए आवश्यक है कि राजनीति की प्रकृति में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन आए. शिक्षा, सुरक्षा, राजनैतिक भागीदारी और रोज़गार जैसे मुसलमानों के लिए अधिक महत्वपूर्ण मुद्दों को लागू करने का काम केंद्र सरकार से ज़्यादा तो राज्य सरकारों का है. केंद्र सरकार तो राज्य सरकारों को पंचायतों में अल्संख्यकों की भागीदारी बढ़ाने जैसे कुछ मामलों में मात्र "सलाह" ही दे सकती है या फिर केंद्रीय रूप में प्रायोजित योजनाओं के लिए वित्तीय संसाधनों को बढ़ा सकती है, लेकिन राज्य स्तर की मशीनरी के सहयोग के बिना कुछ नहीं होगा. स्वायत्त मूल्यांकन व निगरानी प्राधिकरण की सहायता से विभिन्न सामाजिक-आर्थिक समुदायों की दशा को लेकर कागज़ पर एक *डेटा बैंक* बनाया गया है ताकि स्थिति का आवधिक रूप में मूल्यांकन किया जा

सके. ये दोनों ही मुद्दे सच्चर समिति की सिफ़रिशों के केंद्रबिंदु थे,लेकिन यह बात साफ़ नहीं है कि यह काम व्यवस्थित रूप में करने के लिए विभिन्न राज्यों से विस्तृत डेटा कैसे इकट्ठा किया जाएगा

बेहतर निगरानी के अलावा, लाभग्राहियों की जाति, धर्म,आय, लिंग आदि के आधार पर सामाजिक-धार्मिक-आर्थिक प्रोफ़ाइल की विस्तृत जानकारी जुटानी होगी और सेवा व्यवस्था का क्षेत्रीय पैटर्न बनाना होगा और उसे सार्वजनिक रूप से सुलभ भी कराना होगा. नियमित रूप में ऐसी जानकारी एकत्र करने से कार्यान्वयन-एजेंसियों पर भी दबाव बना रहेगा कि वे इसमें ईमानदारी बरतें ताकि भेदभाव कम किया जा सके. इसे कारगर बनाने के लिए सरकार को कार्यान्वयन प्राधिकारियों के लिए यह जानकारी जुटाना और उसकी सूचना देना कानूनी तौर पर अनिवार्य करना होगा. विशाल डेटा संग्रहण की प्रक्रिया में सुधार भी लाना होगा और यह सुधार राज्य एजेंसियों की कार्यप्रणाली में भी करना होगा. डेटा संग्रहण की ऐसी प्रक्रिया के बिना न तो डेटा बैंक और न ही निगरानी प्राधिकरण का कोई मतलब रह जाता है. और नागरिक समाज, जो महात्वपूर्ण प्रहरी की भूमिका निभा सकता है, सूचना का अधिकार होने पर भी निष्प्रभावी ही रहेगा.

सच्चर समिति की रिपोर्ट को राजनीति का एक झटका यह भी लगा कि रिपोर्ट के अनेक व्यावहारिक और विश्लेषणपरक निष्कर्ष तो शिक्षाशास्त्रियों और नागरिक समाज की नज़रों से ओझल ही हो गए. खास तौर पर अन्य समुदायों की तुलना में अधिक गरीबी,शिक्षा के अभाव और सार्वजनिक सुविधाओं की कमी के बावजूद मुसलमानों में बाल मृत्यु की दर अपेक्षाकृत कम है और स्त्रियों की तुलना में पुरुषों का लैंगिक अनुपात ज़्यादा है. विकास के अन्य पैमानों की तुलना में सुधार की धीमी दर के बावजूद हाल के वर्षों में ही इन दोनों मामलों में भी मुसलमानों के विकास की गति तेज़ रही है. हाल ही के अध्ययन से इन पहेलियों के कुछ उपयोगी हल भी सामने आए हैं और मुसलमान बच्चों में ज़िंदा रहने की बेहतर क्षमता पाई गई है, जिसके कारण विभिन्न समुदायों में महिलाओं की स्थिति के बारे में नए निष्कर्ष सामने आई है. मुसलमान माताएँ लंबे समय तक स्वस्थ रहती हैं और जन्म के समय उनके अल्पपोषण की गुंजाइश कम ही होती है. पुत्र के लिए आग्रह हिंदुओं की तुलना में मुसलमान महिलाओं में कम ही रहता है.शायद यही एक कारण है जो मुसलमान महिलाओं की बेहतर स्थिति का बयान कर सकता है. लेकिन सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा की पहुँच में कोई खास अंतर न होने के बावजूद अधिकांश मुसलमान महिलाएँ दस्त के इलाज की कोशिश में लगी रहती हैं और उनके बच्चों की मृत्यु का यही प्रमुख कारण होता है. इसका एक आंशिक कारण तो यही हो सकता है कि मुसलमान महिलाएँ कामकाज नहीं करतीं और ज़्यादा समय घर में ही बिताती हैं. साथ ही आँकड़े यह दर्शाते हैं कि मुसलमान महिलाएँ हिंदू महिलाओं की तुलना में स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच और महिलाओं की आमदनी के उपयोग के मामले में कम स्वतंत्र होती हैं.

हैरानी की बात यह है कि इन सभी कारणों और अन्य संपत्ति आदि पर अधिकार न होने और अन्य अंतरों के बावजूद भी मुसलमानों में जिजीविषा अधिक प्रबल रहती है. इसे देखते हुए भिन्न-भिन्न समुदायों में बच्चों के पालन-पोषण और बाल मृत्यु की भिन्नताओं को लेकर अनुसंधान करने की आवश्यकता है. खानपान की चीज़ों के घरेलू सदस्यों के बीच वितरण के मामले पर भी अनुसंधान की आवश्यकता है. मुसलमानों के बीच ऐसे वितरण में लैंगिक भेदभाव न होने की संभावना पर पहले ही

विचार किया जा चुका है और ये तथ्य भी सामने रखे जा चुके हैं कि मुसलमानों के बीच भिन्न-भिन्न आयु समूहों में लैंगिक अनुपात भी बेहतर है और देश के विभिन्न क्षेत्रों में इस समुदाय में कम वजन के साथ जन्म लेने वाले बच्चों की घटनाएँ भी कम होती हैं.

इन प्रमाणों के संदर्भ में क्या हमें लैंगिक अन्याय बनाम मुसलमान महिलाओं पर चर्चा को और व्यापक नहीं बनाना चाहिए ? मुसलमानों के बीच लैंगिक मामले आम तौर पर मुस्लिम व्यक्तिगत कानून से जोड़कर देखे जाते हैं. यही कारण है कि शिक्षा और रोज़गार के क्षेत्र में कई ऐसी सामान्य लैंगिक चिंताएँ हैं जिनकी अनदेखी हो जाती है और जिन्हें मुसलमान महिलाएँ लगातार झेलती हैं. इन्हें दरकिनार करते हुए लैंगिक अनुपात और बाल मृत्यु की दरों के विश्लेषण के आधार पर ठीक उल्टी तसवीर उभरकर सामने आती है.क्या हमें इन निष्कर्षों के आधार पर विभिन्न समुदायों में महिलाओं की स्थिति से जुड़ी बहस का दायरा व्यापक नहीं बनाना चाहिए?

जहाँ एक ओर इन निष्कर्षों से लैंगिक अन्याय पर बहस का दायरा व्यापक बनाने में मदद मिलती है, वहीं दूसरी ओर सच्चर समिति के अन्य अनेक नतीज़ों से मुसलमानों में जन्म दर घटने और उनमें गर्भनिरोधकों का उपयोग बढ़ने के बारे में फैले हुए मिथक को तोड़ने में भी मदद मिलती है. दुर्भाग्य की बात है कि जहाँ एक ओर नागरिक समाज ने इन विशाल आँकड़ों का कोई उपयोग नहीं किया,वहीं सरकार भी समुदायविशेष के लिए संकीर्ण पहल करने में ही जुटी हुई है. सच्चर समिति की सिफ़ारिशों को लागू करने के लिए अल्पसंख्यक मामलों के मंत्रालय को नोडल मंत्रालय बनाना भी गंभीर भूल है और शायद इस समुदाय को मुख्य धारा में शामिल करने में यह बाधा भी बन गई है. सच्चर समिति की अधिकांश सिफ़ारिशें ऐसे सामान्य कार्यक्रमों का समर्थन करती हैं, जो मात्र मुसलमानों के लिए विशिष्ट न होकर समाज के अन्य सभी कमज़ोर वर्ग के लोगों के लिए हों. यह ज़रूरी है कि नीतिगत कार्यों को ''अल्पसंख्यकों के निगाह'' से ही न देखा जाए. तत्संबंधी नीति-निर्माण और कार्यान्वयन का दायित्व पक्षपात की भावना को खत्म करने के उद्देश्य से गृह मंत्रालय या वित्त मंत्रालय जैसे सामान्य मंत्रालय पर होना चाहिए. समिति के नतीजों को सार्वजनिक बहस के दायरे में लाने के लिए हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए.

राकेश बसंत भारतीय प्रबंधन संस्थान, अहमदाबाद में अर्थशास्त्र के प्रोफ़ेसर हैं.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा),रेल मंत्रालय, भारत सरकार
<malhotravk@hotmail.com>